श्री साईसच्चरित

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। अध्याय ३९ वा।।

।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीसरस्वत्यै नमः।। श्रीगुरुभ्यो नमः।। श्रीकुलदेवतायै नमः।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः।। श्रीसद्गुरुसाईनाथाय नमः।। धन्य धन्य शिर्डी स्थान। धन्य द्वारकामाईभुवन। जेथें श्रीसाई पुण्यपावन। आनिर्वाण वावरले।।१।। धन्य धन्य शिर्डीचे जन। जयालागीं इतुक्या लांबून। जेणें कवण्याही निमित्तें येऊन। ऋणी करून ठेविलें।।२।। गांव शिर्डी आधीं लहान। साईसहवासें झाला महान। त्याचेनि झाला अति पावन। त्याचेनि तीर्थपण तयाला।।३।। त्या शिर्डीच्या बायाही धन्य। धन्य त्यांची श्रद्धा अनन्य। न्हातां दळितां कांडितां धान्य। गाती असामान्य साईंतें।।४।। धन्य धन्य तयांचें प्रेम। गीतें गाती अत्युत्तम। ऐकतां तयांतील कांहीं अनुत्तम। होतसे उपरम मनास।।५।। म्हणोनियां श्रोतयांप्रती। यथाकाळें कथानुसंगती। व्हावया तयांची जिज्ञासातृप्ती। देईन विश्रांतीदायक ती।।६।। साई निजामशाहींत प्रकट। आम्रतळीं मार्गानिकट। धूपखेड्याचे वऱ्हाडासकट। शिर्डीस अवचट पातले।।७।। या खेड्यांतील पुण्यवान। चांद पाटील नामाभिधान। तया आरंभीं जडलें हें निधान। इतरां दर्शन त्याचेनी।।८।। कैसी तयाची घोडी हरवली। कैसी साईंची गांठी पडली। कैसी तयांनीं चिलीम पाजिली। घोडी त्या दिधली मिळवून।।९।। चांदभाईचे कुटुंबाचा। भाचा एक होता लग्नाचा। वधूचा योग जुळला शिर्डीचा। वऱ्हाड वधूच्या गांवीं ये।।१०।। येविषयींची साद्यंत कथा। पूर्वीच कथिलीसे श्रोतयांकरितां। तथापि स्मरली प्रसंगोपात्तता। नको पुनरुक्तता तयाची।।११।। चांद पाटील केवळ निमित्त। भक्तोद्धाराची चिंता अत्यंत। म्हणोनि साई हा अवतार धरीत। स्वयेंच कीं येत शिर्डींत।।१२।। जड मूढ हीन दीन। व्रततपसंस्कारविहीन। साळेभोळे भावार्थी जन। कोण साईवीण उद्धरिता।।१३।। अष्टादश वर्षांचें वय। तेथूनि एकांताची संवय। रात्रीं कुठेंही पडावें निर्भय। सर्वत्र ईश्वरमय ज्यासी।।१४।। होता जेथें पूर्वी खड्डा। अवघा गांवचा जो उकिरडा। दिवसा फिरावें चहूंकडा। रात्रीं पहुडावें ते स्थानीं ।।१५।। ऐसीं गेलीं वर्षें बहुसाल। आला खड्ड्याचा उदयकाळ। उठला सभोंवती वाडा विशाळ। या दीनदयाळा साईचा।।१६।। अंतीं त्याच खड्ड्याचा गाभारा। झाला विसांवा साईशरीरा। तेथेंच त्यांना अक्षय थारा। झाला उभारा समाधीचा।।१७।। तोच प्रणतवत्सल साईसमर्थ। दुस्तर भवार्णवसंतरणार्थ। ही निजचरित्रनौका यथार्थ। भक्तजनहितार्थ निर्मितसे।।१८।। कीं ही भवनदी महा दुस्तर। अंधपंगू हा भक्तपरिवार। तयालागीं कळवळा फार। पावेल पैलपार कैसेनी।।१९।। सर्वां आवश्यक भवतरण। तदर्थ व्हावें शुद्धांतःकरण। चित्तशुद्धी मुख्य साधन। भगवद्भजन त्या मूळ।।२०।। श्रवणासारिखी नाहीं भक्ती। श्रवणें सहज गुरुपदासक्ती। उपजे निर्मळ शुद्ध मति। जेथूनि उत्पत्ती परमार्था।।२१।। या साईंच्या अगणित कथा। गातां गातां होईल गाथा। तरीही संकलित वानूं जातां। नावरे विस्तृतता अनावर।।२२।। जों जों श्रोतयां श्रवणीं चाड। तों तों वाढे निवेदनीं आवड। पुरवूनि घेऊं परस्पर कोड। साधूं कीं जोड निजहिताची।।२३।। साईच येथील कर्णधार। दृढ अवधान हाचि उतार। कथाश्रवणीं श्रद्धा आदर। त्या पैलपार अविलंबें।।२४।। गताध्यायीं निरूपण। जाहलें संक्षेपें हंडीचें वर्णन। दत्तभक्तिदृढीकरण। भक्तसंतर्पण नैवेद्यें।।२५।। प्रत्येक अध्याय संपवितांना। पुढील अध्याय विषयसूचना। होत गेली ऐसी रचना। समस्तांना अवगत हें।।२६।। परी संपतां गताध्याय। नव्हती पुढील कथेची सय। साई आठवूनि देतील जो विषय। तोचि कीं आख्येय होईल।।२७।। ऐसें जें होतें स्पष्ट कथिलें। तैसेंचि साईकृपें जें आठवलें। तेंचि कीं श्रोतयांलागीं वाहिलें। सादर केलें ये ठायीं।।२८।। तरी आतां श्रोतयां प्रार्थना। दूर सारूनियां व्यवधाना। शांत चित्तें द्या अवधाना। होईल मना आनंद।।२९।। एकदां चांदोरकर सद्भक्त। बैसूनियां मशिदीत। असतां चरणसंवाहन करीत। गीताही गुणगुणत मुखानें।।३०।। भगवद्गीता चतुर्थाध्याय। जिव्हेस लावूनि दिधला व्यवसाय। हस्तें चेपीत साईंचे पाय। पहा नवल काय वर्तलें।।३१।। भूत-भविष्य-वर्तमान। साईसमर्था सर्व ज्ञान। नानांस गीतार्थ समजावून। द्यावा हें मन जाहलें।।३२।। ज्ञानकर्म-संन्यासन। ब्रह्मार्पणयोगाध्यायाचें पठण। नानांची ती अस्पष्ट गुणगुण। केली कीं कारण प्रश्नास।।३३।। ''सर्वं कर्माखिलं पार्थ''। होय ज्ञानीं परिसमाप्त। संपतां हा त्रयस्त्रिंशत। 'तद्विद्धि प्रणिपात' चालला।।३४।। हा जो श्लोक चवतिसावा। येथेंच पाठास आला विसांवा। बाबांच्या चित्तीं प्रश्न पुसावा। निजबोध ठसावा नानांस।।३५।। म्हणती नाना काय गुणगुणसी। म्हण रे स्पष्ट हळू जें म्हणसी। येऊं दे कीं ऐकूं मजसी। पुटपुटसी जें गालांत।।३६।। म्हण म्हणतां आज्ञा प्रमाण। श्लोक म्हटला चारी चरण। बाबा पुसती अर्थनिवेदन। स्पष्टीकरणपूर्वक।।३७।। तंव ते नाना अतिविनीत। बद्धांजुली होऊनि मुदित। मधुर वचनें प्रत्युत्तर देत। वदत भगवंत मनोगत।।३८।। आतां हा साई-नानासंवाद। व्हावया सर्वत्रांना विशद। मूळ श्लोक पदप्रपद। करूं कीं उद्धृत गीतेंतुनी।।३९।। कळावया प्रश्नाचें वर्म। तैसेच संतांचे मनोधर्म। करावा वाटे ऐसा उपक्रम। जेणें ये निर्भ्रम अर्थ हाता।।४०।। आधीं गीर्वाण भाषा दुर्गम। साईंस कैसी झाली सुगम। आश्चर्य करिती प्रश्न सधर्म। ज्ञान हें अगभ्य संतांचें।।४१।। कधीं अध्ययन केलें संस्कृता। कधीं न कळे वाचिली गीता। कीं तो गीतार्थहृद्गतज्ञाता। तैसा हो करिता प्रश्नातें।।४२।।

श्रोतयांचिया समाधाना। व्हावी मूळ श्लोकाची कल्पना। म्हणोनि अक्षरशः भगवंतवचना। वदतों जें विवेचना साह्यभूत।।४३।। ''तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः''।।४४।। हा तो गीतेचा मूळ श्लोक। भाषानुसार अर्थ देख। टीकाकारही झाले अनेक। ते एकवाक्यात्मक समस्त।।४५।। नानाही मोठे बहुश्रुत। गीताभाष्यपारंगत। कथूं लागती पदपदार्थ। यथाविदित श्लोकार्थ।।४६।। रसपूरित मधुरवाणी। नाना सविनय नम्रपणीं। अन्वयअर्थ आणूनि ध्यानीं। अर्थनिवेदनीं सादर।।४७।। म्हणती गुरुपदीं प्रणिपात। गुरुसेवेसी विकी जो जीवित। प्रश्नादिकीं आदरवंत। ज्ञानी त्या ज्ञानार्थ उपदेशिती।।४८।। सारांश कृष्ण कृपामूर्ति। अर्जुना जें प्रेमें वदती। गुरुसेवा गुरुप्रणती। ज्ञानसंवित्तिदायक ही।।४९।। अर्जुना एणें मार्गें जातां। तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुजकरितां। दावितील ज्ञानाचा रस्ता। बाबा या अर्था मी जाणें।।५०।। शांकरभाष्य आनंदगिरी। शंकरानंदी व्याख्या श्रीधरी। मधुसूदन नीलकंठाधारीं। उपदेशपरी ही देवाची।।५१।। प्रथम दोन चरणांचा अर्थ। मान्य करिती साई समर्थ। परी उत्तर श्लोकार्धमथित। साई जें कथित तें परिसा।।५२।। इतरही भक्तचकोरगण। साईमुखचंद्र अनुलक्षून। करावया अमृतकणसेवन। आ पसरूनि आस्थित।।५३।। म्हणती ''नाना तृतीय चरण। पुनश्च लक्षांत घेईं पूर्ण। 'ज्ञान' शब्दामागील जाण। अवग्रह आण अर्थास।।५४।। हें मी काय वदें विपरीत। अर्थाचा काय करितों अनर्थ। असत्य काय पूर्वील भाष्यार्थ। ऐसेंही निरर्थ ना मानीं।।५५।। ज्ञानी आणि तत्त्वदर्शी। ज्ञान उपदेशिती ऐसें जें म्हणसी। तेथें अज्ञान पद जैं घेसी। यथार्थ घेसील प्रबोध।।५६।। ज्ञान नव्हे बोलाचा विषय। कैसें होईल तें उपदेश्य। म्हणोनि ज्ञान शब्दाचा विपर्यय। करीं मग प्रत्यय अनुभवीं।।५७।। परिसिला तुझा ज्ञान-पदार्थ। अज्ञान घेतां काय रे वेंचत। 'अज्ञान' वाणीचा विषय होत। ज्ञान हें शब्दातीत स्वयें।।५८।। वार वेष्टी गर्भासी। अथवा मल आदर्शासी। विभूति आच्छादी वन्हीसी। तैसेंच ज्ञानासी अज्ञान।।५९।। अज्ञानानें आवृत्त ज्ञान। केलें या गीतीं भगवंतें कथन। एतदर्थ होतां अज्ञाननिरसन। स्वभावें ज्ञान प्रकाशे।।६०।। ज्ञान हें तों स्वतःसिद्ध। शैवालावृत तोयसें शुद्ध। हें शैवाल जो सारील प्रबुद्ध। तो जल विशुद्ध लाधेल।।६१।। जैसें चंद्रसूर्यांचें ग्रहण। ते तों सर्वदा प्रकाशमान। राहू केतु आड येऊन। आमुचे नयन अवरोधिती।।६२।। चंद्रसूर्यां नाहीं बाध। हा तों आमुचे दृष्टीस अवरोध। तैसें ज्ञान असे निर्बाध। स्वयंसिद्ध स्वस्थानीं।।६३।। डोळा करी अवलोकन। तयाची देखणी शक्ति तें ज्ञान। वरी पडळ वाढे तें अज्ञान। तयाचें निरसन आवश्यक।।६४।। तें पडळ अथवा सारा। हस्तकौशल्यें दूर सारा। देखणी शक्ति प्रकट करा। अज्ञानतिमिरा झाडोनी।।६५।। पहा हें सकल दृश्यजात। अनिर्वचनीय मायाविजृंभित। हीच अनादि अविद्या अव्यक्त। अज्ञानविलसित तें हेंच।।६६।। ज्ञान ही वस्तु जाणावयाची। नव्हे ती विषय उपदेशाची। प्रणिपात परिप्रश्न सेवा हींचि। गुरुकृपेची साधने।।६७।। विश्वाचें सत्यत्व महाभ्रम। हेंचि ज्ञानावरण तम। निरसूनि जावें लागे प्रथम। प्रज्ञान ब्रह्म प्रकटे तैं।।६८।। संसारबीज जें अज्ञान। डोळां पडतां गुरुकृपांजन। उडे मायेचें आवरण। उरे तें ज्ञान स्वाभाविक।।६९।। ज्ञान हें तों नव्हे साध्य। तें तों आधींच स्वयंसिद्ध। हें तो आगमनिगमप्रसिद्ध। अज्ञान हा विरोध ज्ञानाला।।७०।। देवां भक्तां जें भिन्नपण। हेंच मूळ अज्ञान विलक्षण। तया अज्ञानाचें निरसन। होतांच पूर्ण ज्ञान उरे।।७१।। दोरापोटीं सर्पा जनन। हें तों शुद्धस्वरूपाज्ञान। स्वरूपोपदेशें निरसे अज्ञान। उरे तें ज्ञान दोराचें।।७२।। पोटीं सुवर्ण वरी काट। काटापोटीं लखलखाट। परी तो व्हावयालागीं प्रकट। हव्यवाटचि आवश्यक।।७३।। मायामूळ देहजनन। अदृष्टाधीन देहाचें चलन। द्वंद्वें सर्व अदृष्टाधीन। देहाभिमान अज्ञान।।७४।। म्हणोनि जे स्वयें निरभिमान। तयां न सुखदुःखाचें भान। विरे जैं अहंकाराचें स्फुरण। तैंच अज्ञाननिरास।।७५।। स्वस्वरूपाचें अज्ञान। तेंच मायेचें जन्मस्थान। होतां गुरुकृपा मायानिरसन। स्वरूपज्ञान स्वभावें।।७६।। एका भगवद्भक्तीवीण। किमर्थ इतर साधनीं शीण। ब्रह्मदेवही मायेअधीन। भक्तीच सोडवण तयाही।।७७।। हो कां ब्रह्मसदनप्राप्ती। भक्तीवांचूनि नाहीं मुक्ती। तेथेंही चुकल्या भगवद्भक्ती। पडे तो पुनरावृत्तींत।।७८।। तरी व्हावया मायानिरसन। उपाय एक भगवद्भजन। भगवद्भक्ता नाहीं पतन। भवबंधनही नाहीं तया।।७९।। जन म्हणती माया लटकी। परि ती आहे महाचेटकी। ज्ञानियां फसवी घटकोघटकीं। भक्त नाचविती चुटकीवरी।।८०।। जेथें ठकती ज्ञानसंपन्न। तेथें टिकती भाविकजन। कीं ते नित्य हरिचरणीं प्रपन्न। ज्ञानाभिमानधन ज्ञानी।।८१।। म्हणोनि व्हावया मायातरण। धरावे एक सद्गुरुचरण। रिघावें तया अनन्यशरण। भवभयहरण तात्काळ।।८२।। अवश्य येणार येवो मरण। परि न हरीचें पडो विस्मरण। इंद्रियीं आश्रमवर्णाचरण। चित्तें हरिचरण चिंतावे।।८३।। रथ जैसा जुंपल्या हयीं। तैसेंच हें शरीर इंद्रियीं। मनाच्या दृढ प्रग्रहीं। बुद्धी निग्रही निजहस्तें।।८४।। मन संकल्पविकल्पभरीं। धांवे यथेष्ट स्वेच्छाविहारी। बुद्धी त्या निजनिश्चयें निवारी। लगाम आवरी निजसत्ता।।८५।। बुद्धीसारिखा कुशल नेता। ऐसा सारथी रथीं असतां। रथस्वामींसी काय चिंता। स्वस्थ चित्ता व्यवहरे।।८६।। देहगत सकल कार्य। हें बुद्धीचें निजकर्तव्य। ऐसी मनासी लागतां संवय। सर्व व्यवसाय हितमय।।८७।। शब्दस्पर्शरूपादि विषय। येणें मार्गें लागल्या इंद्रिय। होईल व्यर्थ शक्तिक्षय। पतनभय पदोपदीं।।८८।। शब्दस्पर्शरूपादिक। पंचविषयीं जें जें सुख। तें तें अंतीं सकळ असुख। परम दुःख अज्ञान।।८९।। शब्दविषया भुले हरिण। अंतीं वेंची आपुला प्राण। स्पर्शविषया सेवी वारण। साहे आकर्षण अंकुशें।।९०।। रूपविषया भुले पतंग। जाळूनि निमे आपुलें अंग। मीन भोगी रसविषयभोग। मुके सवेग प्राणास।।९१।। गंधालागीं होऊनि गुंग। कमलकोशीं पडे भृंग। एकेका पायीं इतुका प्रसंग। पांचांचा संघ भयंकर।।९२।। हीं तो स्थावर जलचर पंखी। ययांची दुःस्थिती देखोदेखी। ज्ञाते मानवही विषयोन्मुखी। अज्ञान आणखी तें काय।।९३।। अज्ञाननाशें विषयविमुख। होतां, होईल उन्मनीं हरिख। जीव ज्ञानस्वरूपोन्मुख। आत्यंतिक सुख लाधेल।।९४।। चित्तें करा हरिगुरुचिंतन। श्रवणें करा चरित्रश्रवण। मनें करा ध्यानानुसंधान। नामस्मरण जिव्हेनें।।९५।। चरणीं हरिगुरुग्रामागमन। घ्राणीं तन्निर्माल्याघ्राणन। हस्तीं वंदा तयाचे चरण। डोळां घ्या दर्शन तयाचें।।९६।। ऐशा या सकल इंद्रियवृत्ती। तयांकारणें लावितां प्रीती। धन्य तया भक्तांची स्थिती। भगवद्भक्ती काय दुजी।।९७।।

सारांश समूळ अज्ञान खाणा। उरे तें ज्ञान सिद्ध जाणा। ऐसें या श्लोकाचें हृद्‌गत अर्जुना। श्रीकृष्णराणा सूचवी।।९८।।'' आधींच नाना विनयसंपन्न। परिसूनि गोड हें निरूपण। पायीं घालूनि लोटांगण। वंदिले चरण दों हातीं।।९९।। मग ते श्रद्धानिष्ठ प्रार्थना। करिती दवडा मम अज्ञाना। दंडा माझिया दुरभिमाना। यथार्थ शासना करोनि।।१००।। सात्त्विकतेची हौस वरिवरि। विकल्प अखंड दाटे अंतरीं। अपमान साहेना क्षणभरी। अज्ञान तें तरी काय दुजें।।१०१।। पोटीं प्रतिष्ठेची उजरी। ध्यानाविर्भाव दावी वरी। कामक्रोध धुमसे भीतरीं। अज्ञान तें तरी काय दुजें।।१०२।। आंतूनि सकळ कर्मे नष्ट। बाहेर मिरवूं ब्रह्मनिष्ठ। आचारहीन विचारभ्रष्ट। अज्ञान स्पष्ट काय दुजें।।१०३।। बाबा आपण कृपाघन। करोनियां कृपाजलसिंचन। करा हा अज्ञानदावानल शमन। होईन मी धन्य इतुकेनी।।१०४।। नलगे मज ज्ञानाची गोठी। निरसा माझिया अज्ञानकोटी। ठेवा मजवरी कृपादृष्टी। सुखसंतुष्टी तेचि मज।।१०५।। साई सप्रेम करुणाघन। नानांस निमित्ता पुढें करून। तुम्हां आम्हां सकलांलागून। गीतार्थप्रवचन हें केलें।।१०६।। गीता भगवंताचें वचन। म्हणोनि हें प्रत्यक्ष शास्त्र जाण। कालत्रयींही याचें प्रमाण। कधींही अवगणन होतां नये।।१०७।। परि अत्यंत विषयासक्त। अथवा जो खरा जीवन्मुक्त। या दोघांसीही न लगे शास्त्रार्थ। मुमुक्षूप्रीत्यर्थ या जन्म।।१०८।। विषयापाशीं दृढ आकळिला। कधीं पावेन मी मुक्ततेला। ऐसें वदतिया मुमुक्षूला। तारावयाला हीं शास्त्रें।।१०९।। पाहूनि ऐशा निजभक्तांला। संतांस जेव्हां येतो कळवळा। काढूनि कांहीं निमित्ताला। उपदेश अवलीला प्रकटिती।।११०।। देव अथवा गुरु पाहें। भक्तांआधीन सर्वस्वीं राहे। भक्तकल्याण चिंता वाहे। सांकडीं साहे तयांचीं।।१११।। आतां एक दुजें लहान। करितों साईंचें वृत्त कथन। कैसी एकाद्या कार्याची उठावण। करितां नकळतपण दाविती।।११२।। असो सान वा तें मोठें। खरें कारण कधींही न फुटे। कार्य मात्र हळू हळू उठे। वाच्यता न कोठें केव्हांही।।११३।। सहजगत्या एकादें काम। निघावें करावा उपक्रम। न मूळ कारणनिर्देश ना नाम। वरिवरी संभ्रम आणिक।।११४।। ''बोलेल तो करील काय। गरजेल तो वरसेल काय।'' या रूढ म्हणीचा प्रत्यय। विनाव्यत्यय साई दे।।११५।। बाबांसारिख्या अवतारमूर्ती। परोपकारार्थ जगीं अवतरती। होतां इच्छितकार्या समाप्ती। अंतीं अव्यक्तीं समरसती।।११६।। आम्हां न ठावें मूळ कारण। कोठूनि आलों कुठे प्रयाण। किमर्थ आम्ही झालों निर्माण। काय कीं प्रयोजन जन्माचें।।११७।। बरें स्वच्छंदें जन्म कंठला। पुढें मृत्यूचा समय आला। सकळ इंद्रियगण विकळ झाला। तरीही न सुचला सुविचार।।११८।। कलत्र पुत्र बंधु जननी। इष्टमित्रादि सकल स्वजनीं। देह त्यागितां पाहूं नयनीं। तरीही न मनीं सुविचार।।११९।। तैसे नव्हती संतजन। ते तों अत्यंत सावधान। अंतकालाचें पूर्ण ज्ञान। ठावें निजनिर्वाण तयांतें।।१२०।। देह असेतों अतिप्रीती। भक्तांलागीं देहें झिजती। देहावसानीं ही देहावस्थिती। निजभक्तहितीं लाविती।।१२१।। देह ठेवावयाचे आधीं। कोणी आपुली बांधिती समाधी। कीं पुढें निजदेहा विश्रांती। मिळावी निश्चितीं ते स्थानीं।।१२२।। तैसेंच पहा बाबांनीं केलें। परि तें आधीं कोणा न कळलें। समाधिमंदिर बांधवून घेतलें। अघटित केलें तयांनीं।।१२३।। नागपूरस्थ मोठे धनिक। बापूसाहेब बुट्टी नामक। तयां हस्तें हें बाबांचें स्मारक। उभविलें देख बाबांनीं।।१२४।। बापूसाहेब परमभक्त। साईचरणीं नित्यानुरक्त। आले निजपरिवारासहित। राहिले शिर्डीत सेवेस।।१२५।। धरूनि साईचरणीं हेत। नित्यानुवर्ती तेथेंच वसत। पुढेंही तैसेंच नित्यांकित। रहावें शिर्डीत वाटलें।।१२६।। घ्यावी एकादी जागा विकत। उठवावी एक छोटी इमारत। स्वतंत्रपणें वसावें तेथ। आलें कीं मनांत तयांच्या।।१२७।। येथें हें पेरिलें मूळ बीज। त्याचाच वृक्ष हें मंदिर आज। दृश्य स्मारक भक्तकाज। साईमहाराजप्रेमाचें।।१२८।। कैसा कैसा याचा उभारा। झाला उपक्रम कवण्या प्रकारा। कैसा हा आला या आकारा। वृत्तांत सारा अवधारा।।१२९।। विचार हे ऐसे चित्तीं। दीक्षितांचिया माडीवरती। बापूसाहेब निद्रिस्त स्थितीं। दृष्टांत देखती मौजेचा।।१३०।। तेथेंच एका बिछान्यांत। माधवरावही असतां निद्रिस्त। त्यांसही तोच दृष्टांत। परमविस्मित दोघेही।।१३१।। बापूसाहेम स्वप्न देखती। बाबा तयांतें आज्ञापिती। आपणही आपुला वाडा निश्चितीं। देउळासमवेती बांधावा।।१३२।। होतांक्षणींच हा दृष्टांत। बापूसाहेब जाहले जागृत। आमूल-स्वप्न आठवीत। आसनस्थित निजशेजे।।१३३।। इकडें ऐसें चाललें असतां। माधवराव ऐकिले रडतां। बुट्टी तयांस जागे व्हा ओरडतां। निद्रितावस्था मावळली।।१३४।। कां हो आपण कां रडत होतां। ऐसें माधवरावांस पुसतां। म्हणती श्रींचे प्रेमोद्‌गार परिसतां। प्रेमोद्रेकता पावलों।।१३५।। बाष्पगद्‌गद जाहला कंठ। नयनीं आंसुवें वाहिलीं उद्‌भट। प्रेम नावरे आवरितां उत्कट। जाहलें परिस्फुट रुदनांत।।१३६।। येऊनि बाबा माझियानिकट। आज्ञा दिधली मजला स्पष्ट। वाडा देऊळ होऊं द्या प्रकट। पुरवीन अभीष्ट सर्वांचें।।१३७।। बापूसाहेब अंतरीं विस्मित। दोघांलागीं एकचि दृष्टांत। मन जाहलें संशयरहित। कार्यार्थोद्यत निश्चित।।१३८।। बुट्टी स्वयें गर्भश्रीमंत। वाडा देऊळ बांधूं समर्थ। माधवराव केवळ सुखवस्त। एकचि दृष्टांत उभयांतें।।१३९।। परस्परांचीं स्वप्नें जुळलीं। परमानंदा भरती आली। रूपरेखा निश्चित केली। योजना अनुमोदिली काकांनीं।।१४०।। असो उदयीक प्रातःकाळी। तिघेही असतां बाबांजवळीं। बाबा नित्य प्रेमसमेळीं। मुख न्याहाळीत शामाचें।।१४१।। शामा वदे देवा हा खेळ। काय आहे तुझा अकळ। झोंपही न घेऊं देसी निश्चळ। तेथेंही आम्हांतेंबरळविसी।।१४२।। तेव्हां बाबा तें परिसूनि। हस्त ठेवीत आपुले कानीं। वदत ''आम्ही आपुले ठिकाणीं। म्हणोत कोणी कांहींही''।।१४३।। असो मग ती पूर्वोक्त योजना। मांडिली बाबांचिया अनुमोदना। जाहली तात्काळ बाबांची अनुज्ञा। समंदिर सदना बांधावया।।१४४।। माधवरावांनीं बांधिली कंबर। झाला तळमजला तळघर। त्यांचेच हातून झाली विहीर। काम हें येथवर पोहोंचलें।।१४५।। लेंडीवरी जात असतां। अथवा तेथूनि मागें परततां। खिडक्या बाऱ्या दारें बसवितां। बाबा उत्सुकता अवलोकीत।।१४६।। वदत करूनि तर्जनी वरी। येथें दार येथें बारी। येथें पूर्वेस काढा ग्यालरी। शोभा बरी दिसेल।।१४७।। पुढें कार्यकारणनिमित्तें। बापूसाहेब जोगांचे हस्तें। पुढील काम होणारें होतें। तें मग त्यांतें सोंपविलें।।१४८।। ऐसें काम होतां होतां। स्फुरण झालें बुट्टींच्या चित्ता। यांतचि एक गाभारा धरितां। मुरलीधर स्थापितां येईल।।१४९।। कल्पनेचा झाला उदय। परि न

पुसतां बाबांचा मनोदय। बुट्टी न आरंभीत कांहींही कार्य। विना गुरुवर्यआज्ञापन।।१५०।। हा तों त्यांचा नित्यनेम। अनुज्ञा बाबांची हेंच वर्म। नाहीं ऐसें एकही कर्म। त्यावीण उपक्रम जयातें।।१५१।। किमर्थ व्हावें मध्यें दालन। काय आहे त्याचें प्रयोजन। दोन्हीकडील भिंती पाडून। करावें स्थापन मुरलीधरा।।१५२।। दालनाचें व्हावें देवालय। बापूसाहेब यांचा मनोदय। परि पुसावा बाबांचा आशय। असल्यास निःसंशय करावें।।१५३।। म्हणोनि वदले माधवरावा। आपण बाबांचा विचार घ्यावा। मग पुढील आक्रम योजावा। रुचेल देवा तैशापरी।।१५४।। बाबा फेरीवर असतां। वाडियाच्या सन्निध येतां। द्वारानिकट स्वारी पावतां। काय पुसतात शामराव।।१५५।। देवा बापूसाहेब वदती। दालनाच्या दोन्ही भिंती। पाडूनि तेथें स्थापूं प्रीतीं। कृष्णमूर्ती मुरलीधरा।।१५६।। मध्यभागीं चौक साधून। करूं तेथें सिंहासन। वरी मुरलीधर विराजमान। शोभायमान दिसेल।।१५७।। ऐसें बापूसाहेब योजिती। परि पाहिजे आपुली अनुमती। देऊळ वाडा दोनी ये रीतीं। हातोहातीं होतील।।१५८।। ऐकूनि ही शामाची उक्ती। बाबा आनंदें बरें म्हणती। ''देऊळ पूर्ण झालियावरती। येऊं कीं वस्तीस आपणही।।१५९।।'' लावूनि वाडियाकडे दृष्टी। बाबा करीत मधुर गोष्टी। ''वाडा पुरा झालियापाठीं। आपुलेसाठींच तो लावूं।।१६०।। तेथेंच आपण बोलूं चालूं। तेथेंच आपण अवघे खेळूं। प्रेमें आपापणा कवटाळूं। भोगूं सुकाळू आनंदाचा।।१६१।।'' असो तेव्हां श्रीसाईंप्रत। माधवरावजी ऐसेंही पुसत। हेचि जरी अनुज्ञा निश्चित। पायासी मुहूर्त करूं कीं।।१६२।। बरी आहे ना देवा वेळ। फोडावया आणूं ना नारळ। ''फोड फोड'' म्हणतां तात्काळ। आणूनि श्रीफळ फोडिलें।।१६३।। असो पुढें झाला गाभारा। मुरलीधर देवाचा चौथरा। मूर्तीही एका कारागिरा। सोंपविली कीं करावया।।१६४।। पुढें आली ऐसी वेळ। बाबांस आलें दुखणें प्रबळ। निकट पातला अंतकाळ। अंतरीं तळमळ भक्तांच्या।।१६५।। बापूसाहेब अस्वस्थ चित्तीं। आतां पुढें या वाड्याची स्थिती। काय होईल नकळे निश्चितीं। म्हणोनि खंती उद्‌भवली।।१६६।। इतउत्तर बाबांचे पाय। मंदिरास या लागती काय। लाखों रुपये जाहले व्यय। अंतीं हा व्यत्यय पातला।।१६७।। बाबांनीं देह ठेविल्यावर। कशास मुरलीधर वा घर। कशास वाडा अथवा मंदिर। दुश्चित्त अंतर बुट्टींचें।।१६८।। पुढें कर्मधर्मसंयोगें। अंतसमय साई-नियोगें। जाहलें वाड्याचिया महद्‌भाग्यें। मनाजोगें सकळांच्या।।१६९।। ''मजला वाड्यांत द्या ठेवून।'' हें अंतकाळींचें बाबांचें वचन। निघतां बाबांचिया मुखांतून। जाहलें निश्चित मन सर्वांचें।।१७०।। मग तें पवित्र साईशरीर। जाहलें गाभारियामाजी स्थिर। वाडा जाहला समाधिमंदिर। अगाध चरित्र साईंचें।।१७१।। धन्य भाग्य त्या बुट्टींचें। जयांचिया गृहीं स्वसत्तेचें। विसांवे शरीर श्रीसाईंचें। नाम जयांचें अतिपावन।।१७२।। असो ऐसी ही कथा पावन। परिसोनि श्रोते सुखसंपन्न। हेमाड साईनाथांसी शरण। सोडी न चरण क्षणभरी।।१७३।। घडोत भोग इष्टानिष्ट। साई एक राखितां संतुष्ट। वर्ततां मार्गें यथोपदिष्ट। लाधेल अभीष्ट अचूक।।१७४।। कथा वक्ता आणि वदन। जेथें साई समर्थ आपण। तेथें हेमाड कोठील कवण। उगाच टोपणनांवाचा।।१७५।। म्हणोनि पुढें होईल प्रेरणा। तैसीच कथा येईल श्रवणा। वेळीं होईल जी जी रचना। तियेची विवंचना कां आज।।१७६।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। गीताविशिष्टश्लोकार्थ-निवेदनं तथा समाधिमंदिरनिर्माणं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः संपूर्णः।।

।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।